International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 19-02-2026, Accepted: 20-03-2026, Published: 06-04-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 13-15

मातृत्व पहचान का निर्माणः स्व, समाज और संघर्ष के बीच परिचय

Sreeja K[1], Dr. Abdul Jabbar M[2]
[1] Research Scholer, Department of Hindi, Government Arts and Science College Calicut, Affiliated to University of Calicut, Kerala, India
[2] Professor, Department of Hindi, farook college Autonomous, Affiliated to University of Calicut, Kerala, India

सारांश
मातृत्व को अक्सर एक स्वाभाविक और स्त्री जीवन का परम कर्तव्य माना जाता है। लेकिन जब हम श्पहचानश् के निर्माण की बात करते हैं, तो मातृत्व केवल बच्चे को जन्म देने की क्रिया नहीं रहता, बल्कि यह एक जटिल सांस्कृतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक संरचना बन जाता है। यह विषय व्यक्तिगत चेतना, इच्छाएँ, परंपराएँ, अपेक्षाएँ, रूढ़ियाँ और संघर्ष के बीच के धागों से बुना गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि मातृत्व एक शारीरिक अनुभव नहीं, बल्कि एक सामाजिक रचना है, जिसमें समाज माँ की पहचान को त्याग, कर्तव्यपरायणता और सर्वगुणसंपन्नता के साँचे में ढाल देता है। इस प्रक्रिया में महिला का अपना श्मैंश अक्सर दब जाता है, खो जाता है या फिर टकराव में चला जाता है। महिला अपने भीतर माँ बनने की सामाजिक आकांक्षा और अपने व्यक्तित्व, करियर, शरीर पर अधिकार और मानसिक स्वास्थ्य के बीच संघर्ष करती है।

मूल शब्दः मातृत्व, पहचान, व्यक्तिगत चेतना, पहचान, आदर्श माँ, मनोविज्ञान, सांस्कृतिक, परिवार, त्यागमयी, मध्यवर्गीय, आदिवासी माताओं, एकल माताएँ, ट्रांस माताएं

'माँ' बनना केवल एक जैविक घटना नहीं है; यह पहचान (identity) का एक गहरा, बहुस्तरीय निर्माण है। जब एक महिला गर्भवती होती है या माँ बनती है, तो वह केवल एक नई भूमिका नहीं निभाती, बल्कि उसका 'स्व' (self) पुनर्गठित होता है। यह प्रक्रिया व्यक्तिगत मनोविज्ञान, पारिवारिक अपेक्षाओं, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक मान्यताओं और ऐतिहासिक प्रवचनों के जटिल अंतर्संबंध से घटित होती है। मातृत्व पहचान का निर्माण एक स्थिर अवस्था नहीं, बल्कि एक गतिशील, कभी–कभी विरोधाभासी यात्रा है—जहाँ एक ओर 'आदर्श माँ' का दबाव होता है, वहीं दूसरी ओर महिला अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं, सीमाओं और प्रतिरोधों के साथ इस पहचान को अपने ढंग से जीती है। यह लेख मातृत्व पहचान निर्माण के विभिन्न सैद्धांतिक आयामों, चरणों और समकालीन संदर्भों का विश्लेषण करता है।

मातृत्व पहचानः अवधारणात्मक ढाँचा

पहचान (identity) का अर्थ है—'मैं कौन हूँ' का वह बोध जो आत्म–चेतना, दूसरों की प्रतिक्रियाओं और सामाजिक श्रेणियों से मिलकर बनता है। मातृत्व पहचान विशेष रूप से उन मान्यताओं, भावनाओं, अभ्यासों और अपेक्षाओं का समूह है जो एक महिला अपने माँ होने के अनुभव से जोड़ती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिः विकासात्मक मनोविज्ञान में, मातृत्व पहचान को 'पहचान वार्ता' (identity negotiation) के रूप में देखा जाता है। यह एरिक एरिकसन (Erik Erikson) के मनोसामाजिक विकास के चरणों में 'उत्पादकता बनाम स्थिरता' (generativity vs. stagnation) से जुड़ी है। लेकिन नारीवादी मनोवैज्ञानिकों ने दिखाया कि महिलाओं के लिए यह चरण पुरुषों से भिन्न होता है, क्योंकि समाज अक्सर महिला की पहचान को मातृत्व के साथ जोड़कर देखता है।

सामाजिक निर्माणवादी दृष्टिः समाजशास्त्रीय और सांस्कृतिक अध्ययनों के अनुसार, मातृत्व पहचान कोई प्राकृतिक या सार्वभौमिक तथ्य नहीं है; यह विशिष्ट सामाजिक, ऐतिहासिक और वैचारिक संदर्भों में निर्मित होती है। अलग–अलग समाजों, धर्मों और वर्गों में 'अच्छी माँ' की परिभाषा भिन्न होती है।

नारीवादी दृष्टिरू १९६०–७० के दशक की दूसरी लहर की नारीवाद ने मातृत्व को 'प्राकृतिक नियति' मानने वाली धारणा को चुनौती दी। सिमोन द बोवार (Simone de Beauvoir) से लेकर एड्रियन रिच (Adrienne Rich) तक, विचारकों ने 'मातृत्व का अनुभव' और 'मातृत्व की संस्था' (institution of motherhood) के बीच अंतर किया। रिच ने Of Woman ठवतद (1976) में लिखा कि पितृसत्तात्मक समाज मातृत्व को एक संस्था के रूप में नियंत्रित करता है, जबकि महिलाओं के वास्तविक, विविध अनुभवों को दबाता है। मातृत्व पहचान का निर्माण कोई एक क्षण नहीं, बल्कि एक सतत प्रक्रिया है जो गर्भधारण से पहले भी शुरू हो जाती है और बच्चे के बड़े होने तक चलती है।

एक महिला के मन में 'माँ' की छवि उसके बचपन से ही बननी शुरू हो जाती है—अपनी माँ, परिवार, मीडिया और सांस्कृतिक कथाओं के माध्यम से। यह 'मातृत्व की कल्पना' (maternal imagination) भविष्य की पहचान का आधार बनती है। यदि यह कल्पना अत्यधिक आदर्शित हो, तो वास्तविक मातृत्व के कठिन अनुभव पहचान संकट पैदा कर सकते हैं।

गर्भावस्था शरीर, मन और सामाजिक स्थिति में एक साथ परिवर्तन लाती है। इस दौरान महिला अक्सर 'हम' (मैं और मेरा शिशु) की अनुभूति से गुजरती है, जो पहचान की सीमाओं को धुंधला कर देता है। मनोविश्लेषक डायना डायमंड (Diana Diamond) और सिडनी ब्लाट (Sidney Blatt) के अनुसार, गर्भावस्था में 'स्व' का पुनर्गठन होता है—एक ओर महिला अपने शरीर और स्वायत्तता पर नियंत्रण खोने का अनुभव करती है, तो दूसरी ओर एक नई पहचान का उदय होता है।

जन्म के बाद पहले कुछ महीने मातृत्व पहचान निर्माण का सबसे तीव्र और संकटपूर्ण समय होता है। यहाँ कई विरोधाभास सामने आते हैं।

समाज की अपेक्षाओं और वास्तविक जीवन के बीच में एक माँ को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वह एक ओर 'त्यागमयी और सहज माँ' की छवि को बनाए रखने की कोशिश करती है, जबकि दूसरी ओर नींद की कमी, शारीरिक थकावट, और दूध पिलाने में आने वाली कठिनाइयों से जूझती है।

एक माँ के लिए अपनी पुरानी जिंदगी और नई जिम्मेदारियों के बीच संतुलन बनाना भी एक बड़ा संघर्ष होता है। वह अपने

कैरियर, शौक, और सामाजिक जीवन को छोड़ने के लिए मजबूर महसूस कर सकती है, और इस बदलाव के साथ तालमेल बैठाना मुश्किल हो सकता है। इसके अलावा, जब संयुक्त परिवारों का समर्थन नहीं होता, तो कई महिलाएँ प्रसव के बाद अकेलापन और अलगाव महसूस करती हैं। यह एक माँ के लिए एक बड़ा तनाव और चुनौती हो सकती है। यदि इस अवधि में महिला को पर्याप्त सहयोग, मान्यता और स्थान मिलता है, तो वह एक एकीकृत पहचान विकसित कर सकती है, जहाँ 'माँ' उसके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण परंतु एकमात्र पहलू नहीं होता।

'अच्छी माँ' का मिथक

हर समाज में एक अनकहा नियम होता है, जिसे हम 'मातृत्व आदर्श' कहते हैं। यह बताता है कि एक अच्छी माँ अपने बच्चे की जरूरतों को अपनी जरूरतों से पहले रखती है। यह बात भारतीय समाज से लेकर पश्चिमी संस्कृति तक, लगभग हर सभ्यता में मातृत्व की परिभाषा का मुख्य हिस्सा रही है।

यह विचार धर्मग्रंथों, लोककथाओं, फिल्मों, विज्ञापनों, और पारिवारिक नसीहतों के माध्यम से इतनी गहराई से हमारे अंदर बैठ जाता है कि यह एक सामान्य सच्चाई लगती है। लेकिन यह सच्चाई वास्तव में सामाजिक, ऐतिहासिक, और राजनीतिक परिस्थितियों का नतीजा है।

एक माँ तो २४ घंटे, ७ दिन, ३६५ दिन काम करती है—उसे कोई छुट्टी नहीं होती। यह बात हमारे समाज में इतनी आम है कि लोग अक्सर इसे माँ की प्रशंसा के रूप में कहते हैं। माँ को हमेशा उपलब्ध रहने के इस आदर्श से जोड़ दिया गया है—माँ को हर वक्त बच्चे की पुकार सुनने, उसकी हर जरूरत का तुरंत जवाब देने, और कभी भी बंद या अनुपलब्ध न होने वाली मशीन समझा जाता है।

यह अपेक्षा इतनी मजबूत है कि अगर कोई माँ थकान, बीमारी या अपनी जरूरतों की वजह से एक पल के लिए भी अनुपलब्ध होती है, तो लोग उसे लापरवाह या स्वार्थी कह देते हैं। अपने करियर या व्यक्तिगत विकास को बच्चे के लिए सीमित कर देना आम बात हो गई है।

एक माँ हमेशा मुस्कुराती, धैर्यवान और समझदारी से काम लेती नजर आती है। अगर वह थकी हुई दिखे, तो लोग उसे शिकायत करने वाली कहते हैं; अगर वह गुस्से में हो, तो उसे अनियंत्रित और बुरी माँ कहा जाता है; अगर वह असहाय दिखे, तो लोग उसे कमजोर और अक्षम समझते हैं।

हमने मातृत्व को एक ऐसी भूमिका बना दिया है जहां माँ को अपनी भावनाएं दिखाने की अनुमति नहीं है। उसे अपने बच्चों की भावनाओं को समझना और संभालना होता है, न कि अपनी।

यह उम्मीद कि माँ को अपने बच्चों की जरूरतों को अपनी जरूरतों से ऊपर रखना चाहिए और हमेशा उपलब्ध रहना चाहिए, मातृत्व का एक अमानवीय आदर्श बनाती है। यह लेख इस तीसरी उम्मीद का विश्लेषण करता है – भावनाओं को दबाने की मांग। यह देखता है कि यह उम्मीद कैसे पैदा हुई, यह माताओं के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव डालती है, और इस दुष्चक्र से बाहर निकलने के क्या तरीके हैं।

यह मिथक महिलाओं पर अपराध बोध का बहुत बड़ा बोझ डालता है। जब कोई महिला इस आदर्श से भटकती है—जैसे काम करना, स्तनपान न कर पाना, या मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं से जूझना—तो उसे 'ख़राब माँ' कहा जाता है। माँ के रूप में अपनी पहचान बनाना अक्सर इस आदर्श को अपना लेने या इससे जूझने के बीच फँस जाता है।

मातृत्व की पहचान हर जगह एक जैसी नहीं होती। यह हमारे वर्ग, जाति, धर्म, क्षेत्र और वैश्विक स्थिति से बहुत प्रभावित होती है। मातृत्व का अनुभव भी एक जैसा नहीं होता। वर्ग, जाति, क्षेत्र, धर्म और आर्थिक स्थिति के आधार पर मातृत्व के अर्थ, उससे जुड़ी अपेक्षाएँ और उसे जीने के तरीके अलग–अलग होते हैं।

मध्यवर्गीय मातृत्व इस विविधता का एक विशिष्ट और बहुत दबाव वाला रूप है। यह वह मातृत्व है जो 'गहन मातृत्व' के आदर्श से सबसे ज्यादा प्रभावित है, जहाँ माँ से बच्चे के शारीरिक, संज्ञानात्मक, भावनात्मक और शैक्षणिक विकास में पूरी तरह से समर्पित, विशेषज्ञों के निर्देशों का पालन करते हुए और समय का सही उपयोग करते हुए भूमिका निभाने की अपेक्षा की जाती है।

श्रमिक वर्ग' से हमारा तात्पर्य उन महिलाओं से है जो अपनी मजदूरी, दैनिक वेतन, या छोटे पैमाने के कृषि और गैर–कृषि कार्यों से अपना जीवन यापन करती हैं। इनमें शामिल हैं:

- **ग्रामीण क्षेत्रों में:** खेतों में काम करने वाली महिलाएँ, छोटे किसानों की पत्नियाँ, पशुओं की देखभाल करने वाली महिलाएँ, बीड़ी बनाने, हस्तशिल्प, और सिलाई–बुनाई जैसे घरेलू उद्योगों में काम करने वाली महिलाएँ।

- **शहरी और अर्ध–शहरी क्षेत्रों में:** निर्माण स्थलों पर काम करने वाली महिलाएँ, घरों में सहायिका के रूप में काम करने वाली महिलाएँ, फेरी लगाने वाली महिलाएँ, कारखानों में मजदूरी करने वाली महिलाएँ, कूड़ा चुनने वाली महिलाएँ, रिक्शा चलाने वाली महिलाएँ (हालांकि यह कम ही होता है), या अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाली महिलाएँ।

भारत में लगभग 90ः महिला श्रमिक असंगठित क्षेत्र में काम करती हैं, जहाँ न तो नियमित वेतन होता है, न ही अवकाश, मातृत्व लाभ, या सामाजिक सुरक्षा। ये महिलाएँ ही श्रमिक वर्ग की माताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। ग्रामीण मातृत्व की स्थिति और भी व्यापक है—भारत की लगभग 65ः आबादी गाँवों में रहती है, और वहाँ की अधिकांश महिलाएँ कृषि या इससे जुड़े कार्यों में लगी हुई हैं।

जब हम मातृत्व के बारे में सोचते हैं, तो हमारे दिमाग में एक तस्वीर आती है – एक सफेद, मध्यम वर्ग की, शिक्षित, और शहरी माँ। लेकिन यह तस्वीर सिर्फ एक भ्रम है। दलित और आदिवासी माताओं का अनुभव बहुत अलग है, और वे अक्सर मुख्य चर्चा से बाहर रहती हैं। उनके लिए मातृत्व सिर्फ बच्चों की देखभाल नहीं है; यह जाति हिंसा, आर्थिक शोषण, और सरकारी मदद की कमी के बीच लड़ने के बारे में है।

यह लेख दलित और आदिवासी माताओं के अनुभवों, संघर्षों, और प्रतिरोध के तरीकों पर ध्यान केंद्रित करता है। यह दिखाता है कि कैसे जाति और आदिवासी पहचान मातृत्व को आकार देती है, और कैसे ये माताएँ अपनी सीमांत स्थिति के बावजूद नए रास्ते बनाती हैं।

एकल माताएँ वे महिलाएँ हैं जो बिना किसी साथी के बच्चों की देखभाल कर रही हैं। यह तलाक, विधवापन, अविवाहित मातृत्व, या स्वेच्छा से एकल माँ बनने के कारण हो सकता है।

क्वीर माताएं वे महिलाएं हैं जो समलैंगिक, उभयलिंगी, पैनसेक्सुअल या अन्य क्वीर पहचान रखती हैं और साथ ही माँ भी हैं। इसमें लेस्बियन जोड़े शामिल हैं जिन्होंने डोनर, सरोगेसी या पिछले विषमलैंगिक संबंधों से बच्चे को जन्म दिया है।

ट्रांस माताएं ट्रांसजेंडर महिलाएं हैं जिन्हें जन्म के समय पुरुष घोषित किया गया था, लेकिन वे माँ हैं – चाहे वे पिछले संबंधों से हों, गोद लेकर, सरोगेसी से, या अपने अंडों/शुक्राणुओं को संरक्षित करके। कुछ ट्रांस पुरुष, जिन्हें जन्म के समय महिला घोषित किया गया था, भी 'माँ' की पहचान रख सकते हैं, हालांकि अक्सर वे 'पिता' या 'मापा' कहलाना पसंद करते हैं।

आजकल, मातृत्व की पहचान मीडिया, विज्ञापन और सोशल मीडिया द्वारा भी बहुत तेजी से बनाई जा रही है। 'इंस्टाग्राम मॉम्स', मातृत्व ब्लॉग, और 'परफेक्ट मदरहुड' की तस्वीरें एक नया

आदर्श स्थापित करती हैं। यह डिजिटल प्रदर्शन अक्सर महिलाओं में तुलना और अपर्याप्तता की भावना बढ़ाता है। साथ ही, बाजार मातृत्व को 'प्रबंधनीय' बनाने के लिए अनगिनत उत्पाद बेचता है – जिससे मातृत्व एक 'परियोजना' बन जाता है, न कि एक जीवित अनुभव।

'स्व' और 'माँ' के बीच संघर्ष

माँ बनने के बाद, एक औरत को अपने आप को फिर से समझने की एक बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ता है। यह चुनौती है कि वह अपने पुराने व्यक्तित्व को नई भूमिका में कैसे ढाले। कुछ औरतें पूरी तरह से माँ बनने में खो जाती हैं और उनकी अपनी पहचान खत्म हो जाती है। दूसरी ओर, कुछ औरतें दोहरी जिंदगी जीती हैं – घर में वे माँ होती हैं और बाहर वे कामकाजी औरत होती हैं। इस दोहरी जिंदगी में संतुलन बनाना अक्सर एक बड़ी चुनौती होती है। कुछ औरतें एक संतुलित पहचान बनाने में सफल होती हैं, जहाँ वे माँ होने को अपनी पहचान का एक हिस्सा मानती हैं लेकिन इसे अपनी पूरी जिंदगी पर हावी नहीं होने देतीं।

नारीवादी विचारधारा इस बात पर जोर देती है कि मातृत्व की पहचान तभी मजबूत होती है जब महिला अपनी मर्जी से इसे अपनाती है। यानी, जब वह माँ बनने का फैसला लेती है, तो यह फैसला उसकी अपनी इच्छा से होना चाहिए। जब वह स्तनपान कराए या न कराए, यह उसकी शारीरिक और परिस्थितिजन्य जरूरतों के अनुसार होना चाहिए। जब वह काम करे या घर पर रहे, यह उसकी अपनी आकांक्षाओं और पसंद के अनुसार होना चाहिए। लेकिन जब यह निर्णय लेने की आजादी छीन ली जाती है – चाहे परिवार द्वारा, डॉक्टर द्वारा, समाज द्वारा, या कानून द्वारा – तब मातृत्व की पहचान एक बंधन बन जाती है।

मातृत्व पहचान बनाना एक जटिल और जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। यह सिर्फ 'माँ' बनने की घटना नहीं है, बल्कि यह सवाल है कि 'मैं इस नई भूमिका में कौन हूँ?' इसका जवाब अकेले नहीं मिलता – यह हमारे शरीर, बच्चे, परिवार, समाज और सपनों के साथ मिलकर बनता है।

एक तरफ, पितृसत्तात्मक समाज अक्सर इस पहचान को सीमित, आदर्शित और दबाने वाले 틀로 ढालने की कोशिश करता है। लेकिन महिलाएं खुद इस पहचान को अपने तरीके से जीती, बदलती और विरोध करती हैं।

मजबूत मातृत्व पहचान तब बनती है जब:

- समाज मातृत्व के अलग–अलग अनुभवों को स्वीकार करे।
- माताओं को अपनी शक्ति और स्वतंत्रता का सम्मान मिले।
- देखभाल की जिम्मेदारी सिर्फ माँ पर न डाले, बल्कि परिवार, राज्य और समाज मिलकर इसे संभाले।
- 'आदर्श माँ' के मिथक की जगह वास्तविक, सहायक और समावेशी मातृत्व चर्चा हो।

मातृत्व पहचान बनाना आखिरकार इस सवाल से जुड़ा है – क्या हम एक ऐसा समाज बना रहे हैं जहां एक महिला माँ बनते हुए भी पूरी तरह से इंसान बनी रहे, जहां उसकी पहचान सिकुड़ने के बजाय फैले। यही वह बिंदु है जहां व्यक्तिगत पहचान का निर्माण सामूहिक सामाजिक परिवर्तन से जुड़ जाता है।

संदर्भ सूची

1. Rich, Adrienne. Of Woman Born: Motherhood as Experience and Institution. W.W. Norton, 1976.
2. Beauvoir, Simone de. The Second Sex. Vintage Books, 1949.
3. Erikson, E. H. (1959). Identity and the life cycle: Selected papers. Psychological Issues, 1, 1-171.
4. Hays, Sharon. The Cultural Contradictions of Motherhood. Yale University Press, 1996.